तपते हुए दिनों के बीच

वितरक :
यूनीक पब्लिकेशंस
3380, बका स्ट्रीट, हौज काज़ी, दिल्ली-110006 (भारत)

 / प्रथम संस्करण : 1987
मूल्य 35/- रुपये / आवरण : मनीषा दास
प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, सी-6/128-सी, लारेंस रोड, नई दिल्ली-110035
मुद्रक : नूतन आर्ट, दिल्ली-110006

TAPTE HUAI DINO KE BEECH (Poetry-Collection)
by Subhash Rastogi Rs. 35/-

हरियाणा साहित्य अकादमी के सहायतानुदान से प्रकाशित

तपते हुए दिनों के बीच

सुभाष रस्तोगी

अनन्य प्रकाशन, दिल्ली

प्राक्कथन

हरियाणा साहित्य अकादमी राज्य के लेखकों को साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने मे कार्यरत है। हरियाणा के वे लेखक जो हिन्दी, हरियाणवी, पजाबी या संस्कृत में साहित्य रचना करते है, उन्हें अपनी अप्रकाशित रचनाओ को प्रकाशित करवाने के लिये आर्थिक सहायता भी दी जाती है। इसी योजना के अन्तर्गत श्री सुभाष रस्तोगी के प्रस्तुत कविता-संग्रह 'तपते हुए दिनो के बीच' के प्रकाशन के लिए अकादमी द्वारा सहायतानुदान दिया गया है। आशा है कि लेखक का यह श्रम-साध्य प्रयास सर्वथा सराहा जायेगा।

रूपनारायण शर्मा,
निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

प्रिय
अशेष व अभिषेक
के लिए

'तपते हुए दिनों के बीच' मेरा छठा काव्य-संकलन है। यानी मेरी कविता की दुनिया मे एक नया कदम।

कविता मेरे लिए वातानुकूलित ड्राइंगरूमो के बेशकीमती गमलो में कैक्टस रोपने की तरह अभिजात्य का फैशन नही है। कविता मेरे लिए जीवन-यापन की बुनियादी शर्तो मे से एक है—जीवन की तमाम विसंगतियो से जूझने मे समर्थ किसी तेज धार हथियार की तरह।

जीवन बहुत विस्तृत है, विराट है। उसके विचित्र रूप हैं। कवि जीवन के इन रूपो को पकड़ने के लिए कविता का व्यवहार करता है। उसका ज्ञान, उसकी आकांक्षा, उसकी निर्जनता, उसका व्यक्तित्व, सामाजिक मनुष्य के साथ मिलने की उसकी आकुलता, इन सभी को वह अपनी कविता का चरित्र देकर छूने और पकड़ने की कोशिश करता है। विख्यात स्पेनी कवि लोर्का ने एक साक्षात्कार मे कहा था : 'पोएट्री इज लिबरेशन'—कविता मुक्ति है। मेरे निकट भी कविता का मानी मुक्ति ही है। मुक्ति का यही भाव मुझे कभी-कभी जुलूस के साथ चलते हुए भी अपने आस-पास से निरसंग कर देता है। मैं मानता हूं कि कवि हमेशा दूसरों के निर्देश पर चलने के लिये बाधित नही है। कवि के हाथो में कोढ नही हुआ है कि हर वक्त उसे अपने हाथ जूलूस के साथ उठाये रखने होंगे। दरअसल एक तरफ सामाजिक-दायित्व-बोध और दूसरी तरफ व्यक्ति-मन की निरसंगता और निर्जनता के टकराव से ही मेरी कविता जन्म लेती है। 'तपते हुए दिनो के बीच' मेरी इसी प्रयास-शृंखला की अगली कोशिश है। मेरी यह कोशिश कितनी सार्थक रही है, इसका निर्णय तो सुधी पाठकगण ही करेंगे।

श्रद्धेय डॉ यश गुलाटी का मै विशेष रूप से इसलिए उपकृत हूं कि सही गलत मे फर्क करने की तमीज मैंने उनसे ही सीखी है।

भाई प्रेम विजय का भी मैं आभारी हूं जिनका निश्छल स्नेह और प्रोत्साहन सदैव मेरा मार्गदर्शन करते रहे है।

राजकुवर मेहता, सुभाष शर्मा, माधव कौशिक, जगरूप सिंह 'रूप', प्रमोद मदान व राकेश कुमार—अपने इन सभी रचनाधर्मी मित्रो का भी मैं हृदय से अनुगृहीत हूं जिनका प्रत्येक रचना का रूप माजने-संवारने के दौरान निर्व्याज सहयोग प्राप्त हुआ है।

हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ० रूपनारायण शर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित न करना कृतघ्नता ही होगी जिनके सहायतानुदान की वजह से ही यह पुस्तक आपके हाथों तक पहुंच सकी है।

—सुभाष रस्तोगी,
2171/22-सी,
चंडीगढ-160022

अनुक्रम

एक शहर जलता हुआ

आपने कविता मांगी है
कविता-अंक के लिए
और मेरा शहर जल रहा है/पिछले कई दिनो से
कोई भी खिड़की/कोई भी फूल
नहीं सलामत है इस जानलेवा आग से
मैं चाहता हूं कविता से पहले
यह खबर आप तक पहुंचे !

अब कल ही की तो बात
खुदाबख्श बाहर निकला/बीवी की दवा लाने को
कि उसका क़त्ल हो गया
उसका खून फैल गया सड़क पर
उसकी बेवा कराहती रही रात भर
मेरे आसपास
मेरा दम घुटने लगा

आग के कई रंग होते है जनाब
वह अगर चूल्हे में हो/तो जीवनदात्री होती है
और अगर चिलम में हो तो/एक खुशबूदार तपिश देती है
लेकिन आग जब सड़कों पर फैले
तो जानलेवा बन जाती है
यही जानलेवा आग/किसी चोर दरवाजे से
घुस आई है/मेरे शहर के/हर घर के भीतर
मर्द/औरत/बच्चे सहमे हुए हैं
अपने-अपने घरों में !

अगर मैं नेता होता
तो शहर को जलते हुए देखता रहता चुपचाप
ज्यादा-से-ज्यादा करता तो क्षतिग्रस्त क्षेत्र का
हवाई-दौरा करके/एक

भव्य वक्तव्य अखबार में छपवा लेता !
पर यह मुमकिन नहीं है जनाब
मुझे बाजार जाना है
और खुदाबख्श की बेवा के लिए
दवा लानी है !

आग किसकी जिम्मेवारी है
मुझे नहीं मालूम श्रीमान
पर मैं चाहता हूं/आज की तारीख में
यह दर्ज किया जाए
कि सन् ४७ का बरस
मुझे आज बहुत तेजी से/याद आ रहा है...

आपने कविता मांगी है कविता अंक के लिए
और मेरा शहर जल रहा है/पिछले कई दिनों से
मैं चाहता हूं
कविता से पहले
यह खबर आप तक पहुंचे !

धूप का रुख़ बदलना है

अभी-अभी जो शख़्स इधर से गुजरा है
उसे जिंदा या मुर्दा पकड़ने की मुनादी
आज शहर में पिट रही है

आंखें सुर्ख़ आग-सी
रंग तांबई
बाल—
कांटेदार बाड़ सरीखे

कद दरम्याना
पेट पीठ से सटा हुआ
नाम ?
खतरनाक मुजरिम
जिंदा या मुर्दा पकड़ने वाले को भारी इनाम

कंधे पर बदरंग झोला लटकाए
हो सकता है कि वह इस वक़्त भी
शहर की किसी बदनाम बस्ती में
लोगों को भड़का रहा हो/कि हमें
धूप का रुख बदलना है
धूप—
जो किसी एक की मिलकियत नहीं
सबकी है/उनकी भी
जो किसी भी/पंक्ति में शामिल नही है
यह भी मुमकिन है/वह फिर/इधर से गुजरे
आपको भड़काए
कि जली हुई रोटी
आपके बच्चों के ही हिस्से में/हमेशा क्यों आती है
कोई विशेष पहचान
अजी जनाब इसकी जरूरत नही

जैसे ही वह इधर से गुजरेगा
बीमार धूप का रंग
एकदम चटख हो उठेगा।

अभी-अभी जो शख्स इधर से गुज़रा है
उसे जिंदा या मुर्दा पकड़ने की मुनादी
आज शहर में पिट रही है !

मास्टर शामलाल

मास्टर शामलाल
वक़्त-बेवक़्त दनदनाता हुआ चला आता है
कई बार मैं झुंझला उठता हूं
उसके इस तरह आने पर
उसके सवालों और कंठ से ठहाके लगाने पर
तिलमिला उठता हूं मैं
मैं बेहद परेशान हो जाता हूं
कमबख़्त इस मौसम में भी कंठ से ठहाके लगाता है !
उसकी खामोशी मुझे अस्त-व्यस्त कर देती है !!

वह जब भी आता है
उसके साथ होता है/हमेशा
एक और चमकीली धूप वाला चेहरा
जो सदा रंगों की बात करता है

मुझे रंगों से चिढ़ है
मैं रंगों की धज्जियां उड़ाता हूं
मैं उस तरफ इशारा करता हूं
जहां सिर्फ रंगहीन आंखों का हुजूम है
मैं कहता हूं/मास्टर शामलाल
तुम्हारे रंग/इस हजूम की/रंगहीन आंखों को
कोई चमक नहीं देते !

मास्टर शामलाल लगाता है/कंठ से ठहाका
मेरी मेज हिलने लगती है
मेज पर रखी किताबें हिलने लगती हैं
मेरे तमाम अक्षर/अक्षरों से बने शब्द
हिलने लगते है
वह कहता है—
मेरे रंग/इस हुजूम की रंगहीन आंखों को

चमक देने के लिए ही प्रतिबद्ध हैं !

मास्टर शामलाल उठता है
और किवाड़ें ठेलकर
निकल जाता है बाहर
चप्पलें पटपटाता हुआ

अभी-अभी कोई बता गया है
मास्टर शामलाल हो गया है
पुलिस की गोली का शिकार
कल वाले हादसे में
लेकिन मुझे लगता है/ऐसे
जैसे वह अभी आएगा दरवाजा ठेलकर
लगाएगा कंठ से ठहाका/कहेगा
मेरे रंग/इस हुजूम की रंगहीन आंखों को
चमक देने के लिए ही प्रतिबद्ध है।

यात्रा—पंखुरी से नदी तक

मैंने अंजलि में जल भर कर
दिया जब तुम्हें अर्घ्य
तब तुम सूरजमुखी की तरह
पंखुरी-पंखुरी खिल उठीं

फिर देखा कि सहसा
उन्हीं पंखुरियों के बीच से
एक नदी उग आई है/दो होठों वाली गोरी नदी
और उस दो होठों वाली गोरी नदी की लहरियां
मुझ में परत-दर-परत
मचलने को
बेचैन हो रही हैं

क्यों अंजलि में उगती है दो होठों वाली गोरी नदी ?
और क्यों उसकी लहरियां
मुझ में परत-दर-परत/मचलने को
बेचैन हो उठती है
और फिर क्यों लगती है गोरी नदी के जल में आग ?
इतना अथाह जल
क्यों किनारे में समा जाता है ?

क्यों उमड़ते हैं इतने बादल ?
दो होठों वाली गोरी नदी के जल में क्यों लगती है आग ?
क्यों उगती है तुम्हारी खुशबूदार आंखें
मेरे आस-पास
और क्यों मेरी आंखों में
प्यास की एक अबूझ पहचान जगा कर
छोड़ देती है देहराग !

इन प्रश्नों का उत्तर
न उमड़ते बादल दे सकते हैं
न तुम्हारी खुशबूदार आंखें
न दो होठों वाली गोरी नदी
क्योंकि दो होठों वाली
गोरी नदी की लहरिया तो
मुझ में परत-दर परत
मुखर होना
और मचलना ही जानती हैं !

शायद इन प्रश्नों का उत्तर
उन प्रतिध्वनियों के पास हो
जो मेरी बेइंतिहा तेज सांसों की/मुखर साक्षी हैं
क्योंकि इन्हीं से/विवश हो
मैं जब अंजलि में जल भर कर
तुम्हें अर्घ्य देता हूं
तब तुम सूरजमुखी की तरह
पंखुरी-पंखुरी खिल उठती हो !

लड़ाई जारी है

मैं थोड़ी सी रोशनी चाहता हूं
अपने कद जितनी
इसलिए अंधेरे के खिलाफ
लड़ाई जारी है

अजीब बात है कि
जब सारे छायादार पेड़ नंगे हो जायें
तब मुझे ऐसे वक़्त में सपने आयें
कि धरती पर
जैसे खेत फसलों से भरे हुए हैं
और मेरे पांव तले की जमीन
जैसे फफोले रहित है/एकदम समतल

कभी दुर्घटनाओं के
दिनों के बीच भी
कोई सतरंगी दिन उगता है
और मैं नीम की छांह में
जब तुम्हें याद करता हूं
तो हो जाता हूं छायादार पेड़ सरीखा
और वक़्त देखते-देखते
नमक के पहाड़ की तरह
डूबने लगता है
समुन्दर के खारे जल में !

फूलों का मौसम
दस्तक देता है दरवज्जे/ऐन उस वक़्त
जब मैं अपनी अबोध बच्ची की आंखों में
कोई खुशबूदार ख्वाब बुनने की कोशिश
करता हूं
तो मुझे वहां जलते हुए फलदार पेड़ का
वीभत्स दृश्य दिखाई देता है !

जाड़ों की धूप

उस शहर में जो एक नीम का पेड़ है
कही उसी के आसपास
रहती थी
जाड़ो की धूप सी वह स्त्री
जिसकी याद आते ही/अब भी
शरीर तवे-सा तपने लगता है

उस शहर में और भी
बहुत से लोग रहते थे
जैसे कि अक्सर दूसरे शहरों में रहते है
जिनके तमाम नक्श
मुझे अब भी उसी तरह याद हैं
जैसे याद है वह नीम का पेड़
लेकिन दिखाकर नक्शा
तुम जो कहो कि मैं उंगली रखकर बताऊं
कहा है वह शहर
तो मैं कहूंगा
मुझे कुछ भी याद नहीं
मैं तो यकीनन यह भी नहीं कह सकता
कि वह औरत/जाड़ों की धूप सी
जिसकी याद आते ही
अब भी/शरीर तवे सा तपने लगता है
कभी इस शहर में रहती थी
पर इतना तय है/कि
नदी/पेड़
फूल और पत्ती का सौंदर्य
भाषान्तरित होकर मुझ तक
जो कविता बन जाता है
वह इसीलिये कि मैं प्यार करता हूं
जाड़ों की धूप-सी एक स्त्री को !

श्राखिर यह क्या मर्ज है

दरअसल हमें अब बड़ी समझदारी के साथ
हवा के रुख की समीक्षा करनी होगी
यह हवा का रुख ही है कि हमें
तलाश है खुद अपने ही
        खोए पावों की
जरूरी नहीं कि रेत पर बने नंगे पांव के निशान
हमें/हमारी वस्ती तक ले ही जाते हों
हमें मुस्तैदी से/शिकारी कुत्ते की तरह
समुन्दर की लहरों के शोर को सुनकर
पहचानना ही होगा
कि पीछा करती आंखें
और दवे पांव रेंगते संकेत
किसके हैं ?
क्यों इतने बदमजा हो गए हैं फूल
कि उनसे मवाद चूता है
क्यों इतना अविश्वसनीय हो गया है मौसम
कि आदमी अपने साये से डरता है

थोड़ी सी धूप की खातिर कब तक हम
उनके लिए टेलीफोन का चोंगा/बने टंगे रहेंगे
हड्डियों की हद तक नंगे हो गए हम
कब तक द्वार पर हरी बत्ती के इंतजार में खड़े रहेंगे
मौसम जब निर्णय का सायरन बजाते हुए
द्वार पर दे रहा हो दस्तक
तो कविता लिखने से बेहतर है/हम
आम आदमी का हथियार बनें
सड़कों पर निकलें—देखें कि
हर शरीर के भीतर ही
क्यों कोई मुर्दा जल रहा है ?
आखिर यह क्या मर्ज है
कि बदबूदार सांस रुक-रुककर क्यों निकल रहा है ?

कुछ बूंद प्यार

नए दिन के साथ
वह पन्ना खुल गया खुशगवार
जिस पर मैंने पहली कविता लिखी थी

तुम—
इस पर कहीं अपना नाम तो लिख दो

बहुत से अंधियारे दिनों में
इसे भी कहीं रख दूगा
एक चमकदार दिन की तरह
और जब-जब वसन्त दस्तक देगा
इन अंधियारे दिनों के बन्द द्वार पर
कहीं भीतर
चमकदार दिन की तरह रखे हुए तुम्हारे नाम को
हर बार फिर पढ़ लूगा

नए दिन के साथ
वह पन्ना खुल गया खुशगवार
जिस पर मैंने पहली कविता लिखी थी
कुछ बूद प्यार की !

धूप ने दिए मुझे

जब भी चाहा मैंने
खोल दूं झरोखे
धूप ने दिए मुझे
बार-बार धोखे !

मैंने तो बस यूं ही
सब कुछ सहना था
मुझको तो घर-बाहर
मूक ही रहना था
कैसे बतायें अब
मौसम के अनुबंध कितने हैं थोथे !

हर शाम—
दरवाजे ने मुझको बताया
दिन भर/कासिद
कोई खत नहीं लाया
जाने कैसे गुजर गए
अनछुए फागुनी झोंके

जब भी चाहा मैंने
खोल दूं झरोखे
धूप ने दिए मुझे
बार-बार धोखे !

जाने क्या हो गया है वक्त को

जाने क्या हो गया है वक्त को
जब दोस्त को खत लिखना
बीवी के संग घूमना
घर में राम-धुन गाना
एक जोखिम-भरा काम है
जाने क्या हो गया है वक़्त को

हवा में लटकी हुई है तलवार
जहां किसी ने मुंह खोला/उसे धर लिया
सारी आवाजे हो जायेंगी खत्म/एक दिन
रह जाएगी हवा में लटकी हुई तलवार
जाने क्या हो गया है वक़्त को

जाने क्या हो गया है वक़्त को
कि चूड़ियों का खनकना गुनाह
हंसना गुनाह
रोना गुनाह
कॉफी हाउस मे
बतियाना गुनाह

जाने क्या हो गया है वक़्त को
शहर बन गया है जंगल
आदमखोर द्वार खटखटाते
सड़को पर छुट्टा घूम रहे हैं
और बीवी को प्यार करता हुआ आदमी
कत्ल हो रहा है
कही भी/किसी भी हालत में हो आप
कत्ल हो सकते हैं
जाने क्या हो गया है वक़्त को

जाने क्या हो गया है वक़्त को
कि यह कविता लिखने के लिए
कल सुवह मेरा भी कत्ल हो सकता है
श्रौर यही कविता पढ़ने या सुनने की ऐवज में
श्रापका नाम भी
जिवह किए जाने वाले लोगो की सूची में शामिल हो सकता है
जाने क्या हो गया है वक़्त को

नीम का पेड़

नीम के पेड में
ग्रा गई है बौर
बारिश होगी/तो निबोलिया झरेंगे
खट्टी/तीती निबोलियों को चखेंगे
चिरैये/सुग्गे/गांव के बच्चे।
ठाकुर के कारिन्दे ग्रायेंगे
कई तरह के ग्रौजारों से लैस
पेड़ काटने के लिए
वह कहेगा—
पेड़ पर न चलाग्रो ग्रारी
नीम के पेड को/होती है तकलीफ
उसका कलेजा है
जो उसने/नीम की जडों में
रोपा है।
वह ग्रब भयभीत है/शिकारियों से
हालाकि/ग्रासपास नही है जंगल
लेकिन वह कहता है/ग्राजकल शिकारी
जंगल में नहीं/बस्तियों में जाल बिछाते हैं बबुग्रा
हवा के साथ
जब ताली बजा-बजाकर-नाचता है नीम
तब वह पेड़ के नीचे बैठ जाता है/चारपाई बिछाकर
होठो-ही-होठो में सीटी बजाता है।
कारिन्दे हिलाते है पेड़ की डाल
वह भीतर से हिलता है
पेड़ पर चलती है ग्रारी
तो ग्रांसू बुद-बुद चूते है
उसकी ग्राखों से।
ग्रासमान की ग्रोर हाथ उठाकर
वह ललकार कर कहता है:

किसने पिया है अपनी असल मां का दूध !
कौन नीम के पेड़ पर चलाएगा आरी !!
और फिर बेदम हो/अगले ही क्षण
खटिया पर पसर जाता है।

मां

सारा दिन खटने के बाद
मां याद करती है
अगले दिन के कामों की फेहरिस्त

एक आदमी के पीछे
मां चुपचाप चलती है
उसके पांवों के निशान की सीध में
अपने पांव रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठाती वह निगाह

किसी चट्टान के पीछे
अंधेरे में चुपचाप
मां सिसकती है/कि
भेटे/रिबन/फूल/बोल का कोई सतरंगी दिन
उसकी जिंदगी में कभी नहीं आया

रात को आंखें बन्द किए हुए
मां सोचती है
समय बीत रहा है
समय बीत जाएगा/दिन-रात खटते हुए

सारा दिन खटने के बाद
मां याद करती है
अगले दिन के कामों की फेहरिस्त

१

तुम आयी
जैसे निबोलियों में धीरे-धीरे
आता है रस !
जैसे चलते-चलते पांव में
फूल जाये धंस
तुम दिखीं
जैसे धरती सूरज से
सुन रही हो कहानी
तुम बोली
जैसे बोली हो डाली
जैसे आसमान के खाली कटोरे में
उतरी हो प्रात. के सूरज की लाली
तुमने छुआ
जैसे पहाड़ों पर उतरा हो
धूप का धुआं

और अंत में
जैसे मिट्टी पकाती है गेहूं को
वैसे मुझे पकाया
और वैसे ही
जैसे बसन्त छेड़ता है देहराग—
धरती के पोर-पोर में
तुमने मुझ में देह-राग जगाया !

तुम आईं
जैसे निबोलियों में धीरे-धीरे
आता है रस !

२

तुम्हारे चेहरे को
अपने हाथों में
थामते हुए मैंने सोचा
दुनिया को…
तुम्हारे चेहरे की तरह
गर्म और सुन्दर होना चाहिए !

तुम्हारा : एक सच

असफलतायें तुम्हारा मुंह चिढ़ाती रहीं
सब तरह की आजमाईशों की—
कसौटी पर खरा उतरने पर भी
कोहकाफ के खजाने का उत्तरदायी
किसी दूसरे को ठहरा दिया गया !
लोग बैसाखियों का सहारा ले
चोटियां चढ गए
और तुम मौसम बदलने की इंतजार में
अपने स्वस्थ दिखते पांवों को सहलाते हुए
ठगे-ठगे खड़े रहे !

तुम्हें शिकायत है
कि तुम्हारा सच
शीशे की दीवारों से टकरा कर
फिर क्यों तुम्हारे ही पास लौट आता है ?
बारूद की तरह फैलकर
चारों ओर बिखरे हुए झूठ को
भस्मीभूत क्यों नही कर देता ?
तुम्हें शिकायत है—
कि वायदे झूठे क्यों होते जा रहे हैं ?
कि बादल घिरने पर भी बरसते क्यों नहीं ?
तुम्हें शिकायत है—
कि सड़कों ने तुम्हें तोड़ा है
इसलिए भाई !
अपने सवालों के हल इतिहास में ढूंढ़ने मत जाना
अथवा न ही इन किंवदन्तियों पर कान देना
कि सदियों पहले रेत में कमल उगा करते थे
अथवा महाभारत-काल में युधिष्ठिर नामक
एक ऐसा भी कालजयी पुरुष हुआ था
जिसने जीवन में कभी झूठ बोला ही नहीं था ।

तुम यह भी न कहना कि—
बादल आज निरवीर्य हो गया है
नहीं तो शहर का भ्रष्ट कोतवाल
बग़ावत फैलाने के आरोप में
तुम्हें जीवित ही जमीन में गड़वा देगा।

बरसों पहले—
इस शहर में सूरज का कत्ल हो गया था
और यत्र-तत्र-सर्वत्र
लावारिस फूल बिखर गए थे
इन लावारिस फूलों को ही चुनना
तुम्हारे वश की है बात
अथवा रीझ सकते हो तुम
कंडे बीनती बनजारिन पर।
और यह महज इत्तिफाक है—
कि पांव कीचड से लथलथ होने पर भी
पेट की अंगीठी की आंच से इतर—
सोचने का मर्द साहस भी तुम ढूंढ लेते हो।

मगर कहीं तुम यह न कहना—
कि बादल आज निरवीर्य हो गया है
नहीं तो शहर का भ्रष्ट कोतवाल
बगावत फैलाने के आरोप में
तुम्हें जीवित ही जमीन में गड़वा देगा।

पिता : तीन शब्द चित्र

१

एक महीना यूं ही बीत गया
जैसे एक दिन
और मैं घर खत लिखना
रोज कल पर स्थगित करता रहा

पिता के घुटने का दर्द जाने अब कैसा होगा
घुटने पर कपड़ा बांधकर अब चल भी पाते होंगे/राम जाने
मैं उन्हें छोड़ आया था
ऊपर से थुलथुल
लेकिन भीतर से खोखली मां के सहारे
जो स्वयं दीवार का सहारा लेकर
उठती है/बैठती है

वहां मां देखभाल करती होगी
गालियों से पिता की
और जब पिता सुन नहीं पाते होंगे/तो
घर से बाहर निकल
नाले की पुलिया पर जाकर बैठ जाते होंगे चुपचाप
माचिस की तीली से
पोपले मुंह में बची हुई आखिरी दाढ़ को कुरेदते हुए !

मुझ पर भी मां झुंझला उठती होगी/बीच-बीच में
कलमुंहा बिल्कुल अपने बाप पर गया है !

एक महीना यूं ही बीत गया
जैसे एक दिन
और मैं घर खत लिखना
रोज कल पर स्थगित करता रहा !

२

कितने अच्छे थे वे दिन
जब मैं तुम्हारे कंधे पर पहाड़ी तोते-सा बैठ
पूरा मेला घूम आता था !

पिता, तुम्हें गुजरे हो गए कितने दिन
यातना के समुन्दर मे गले-गले डूबे हुए भी
तुम्हारे चेहरे पर न आई कभी एक शिकन
न टूटा—
तुम्हारा आत्मबल कभी
हाथ जब भी उठा
आशीर्वाद की मुद्रा में उठा !
बोल जब भी झरे
मंत्रों का रूप लेकर !

जर्जर होते
ताउम्र लडते रहे
तुम एक लडाई
तुम्हारे नही रहने पर भी
तुम्हारी लड़ाई/और बल से
लड रहा हूं
तुम कभी नही हारे पिता !
मैं कभी नही हारूंगा !!

कितने अच्छे थे वे दिन
जब मैं तुम्हारे कंधे पर प
पूरा मेला घूम आता था !

३

रोज सुबह मुंह अंधेरे
काम पर जाने से पहले
पिता रस्सी में बाल्टी बांधकर
उसे तेजी से कुयें में छोड़ते
और फिर हांफते हुए-से
धीरे-धीरे रस्सी खींचते
और मैं
चादर मुंह तक ताने
आराम से सोता !

कोल्हू के बैल थे
पिता
जिन्हें मैंने कभी नींद में भी
सोते/नहीं देखा

आज—
उम्र की तेंतीस सीढ़ियां चढने पर
एक प्रश्न घुमड़ आया है
—'खिचती
रस्सी थी
या पिता ?'

कितनी जल्दी लग जाता था पता
तुम्हारी मुखमुद्रा से
कि कौन-सा शब्द
जल में बालुकण सा छिपा पड़ा है !

पिता, तुम कभी गए नहीं मदरसे
पर शब्दों के कित्ते बड़े जौहरी थे
तुम ही तो थे
जो कहा करते थे
कि नया शब्द जो भी मिले बेटा
नए दोस्त की तरह
उसकी अगवानी करनी सीखो !

अब तो महानगर की इस धकमपेल मे
दाये-बायें शब्द ही शब्द है
आवाजो के इस व्यामोह में
कुछ भी सुन पाना कितना कठिन है
शब्दों के भी तौर-तरीके बदल गए है
सबको भागमभाग मची है
शब्द हो गए हैं श्रीहीन
वे सही अर्थ कहां दे पाते हैं !
ऐसे में कविता बन गई है धनकुबेरों की रखेल
ड्राईगरूमों में कैक्टस रोपने की भांति
अभिजात्य का फैशन बन गई है कविता !

अभिजात्य की इस चकाचौंध मे
अब दुःख को ही लो पिता
कैसा लक-दक रेशमी पोशाकों से सुसज्जित
ऐसे खड़ा है जैसे—
दुःख प्रभु की अनमोल देन हो
सच पिता
आजकल शब्दों में
दुःख जाहिर करने का चलन बहुत है

कविता नहीं. . .

पिता
मैंने रात लिखी एक कविता

कित्ते बरस हो गए
तुससे बतियाये
बचपन में जो कुछ लिखता था
सबसे पहले तुम्हें सुनाता था
सुना-सुनाकर तुम्हे ही तो सीखा लिखना
तुम्हें छोडकर
कोई भी यकीन कहां करता था
मेरे लिखने का
वे भी कैसे दिन थे पिता
जब तक मैं जागा करता था
तुम जगते थे
सोते हुए भी तुम जगते-से क्यों दिखते थे
मुझको पढ़ते देख
तुम्हारी आंखों की कोरों में
कैसे बुरास के फूल खिल उठते थे
अपने कमजोर हाथों में
घुटने मलते-मलते
तुम जाने क्या-क्या सोचा करते थे
मैं जब सवालों की कापी मे
नजर बचाकर तुम्हारी
लिखने लगता था कोई कविता
तब तुम जानबूझ कर भी
कैसे अनजान बने रहते थे
चुपचाप मेरी आंखों के अन्तरीपों में
आती-जाती कविता को
कैसे समूचा बाच लेते थे
और तुम ही तो सुनते थे उसे बड़े मनोयोग से

कितनी जल्दी लग जाता था पता
तुम्हारी मुखमुद्रा से
कि कौन-सा शब्द
जल में वालुकण सा छिपा पड़ा है !

पिता, तुम कभी गए नही मदरसे
पर शब्दों के कित्ते वड़े जौहरी थे
तुम ही तो थे
जो कहा करते थे
कि नया शब्द जो भी मिले वेटा
नए दोस्त की तरह
उसकी अगवानी करनी सीखो !

अब तो महानगर की इस धकमपेल में
दायें-वायें शब्द ही शब्द है
आवाजों के इस व्यामोह में
कुछ भी सुन पाना कितना कठिन है
शब्दों के भी तौर-तरीके वदल गए है
सवको भागमभाग मची है
शब्द हो गए हैं श्रीहीन
वे सही अर्थ कहां दे पाते हैं !
ऐसे में कविता बन गई है धनकुबेरों की रखेल
ड्राईगरूमों में कैक्टस रोपने की भांति
अभिजात्य का फैशन बन गई है कविता !

अभिजात्य की इस चकाचौंध में
अव दुःख को ही लो पिता
कैसा लक-दक रेशमी पोशाकों से सुसज्जित
ऐसे खड़ा है जैसे—
दुःख प्रभु की अनमोल देन हो
सच पिता
आजकल शब्दो में
दुःख जाहिर करने का चलन वहुत है

जिसे देखकर अक्सर लगता है
हाय दुःख भी
कितना सुखकर, मनोहारी होता है !

तुम्हें तो याद ही होगा पिता
जिस दिन मिट्टी ढोने वाले
रुलदु का बूढ़ा बैल मरा
उस दिन बस्ती में
कितनी जल्दी रात घिर आई थी
संझा तक—
किसी से कौर तोड़ते बना नहीं था
कितने ही दिन—
तुलसी का बिरवा रोया था
उस दिन मिट्टी ढोने वाले रुलदु का बूढ़ा बैल
मरा नहीं था
सबकी नम आंखे यह समझ रही थीं
नंगी पीठ पर
भूख के चाबुक खाते-खाते
मानो रुलदु ने दम तोड दिया हो !

पिता, रुलदु कुम्हार का असली दुःख था
सीलखाई
खस्ताहाल दीवारों का भी
अपना दुःख था
उस दुःख की तस्वीर खींचने
की ताकत
भला किसमें थी ?

पिता, अब तुमको क्या समझाऊं
तेरा बेटा अब बड़ा हो गया
सरकस के जोकर की मानिन्द
ऊपर से हंसता/भीतर से रोता है
बस्ती के वानर की भांति

कूद फांदकर
कभी टेलीफोन की घंटी सुनता है
कभी बड़े-बड़ों के पास बैठकर
कविता पर बहस करता है
देखो पिता
अब उसके बालों में भी
तुम्हारी ही भांति
धूप उतर आई है !

पिता, कितने बरस हो गए घर छोड़े
लेकिन ऐसा क्यों है
सपना अब भी
सिर्फ उसी बस्ती का आता है
वही अपढ़/मैली कुचैली
गलीज बस्ती
जिसमें मैंने
अपनी मसें भीगतीं देखी !

पिता/कितने बरस हो गए
तुमसे बतियाये
इसलिए तुमसे ढेर सारी बातें कर लीं
पिता/मैंने रात लिखी जो कविता
अगली बार
फिर कभी सुनाऊंगा !

जिसे देखकर अक्सर लगता है
हाय दु:ख भी
कितना सुखकर, मनोहारी होता है !

तुम्हें तो याद ही होगा पिता
जिस दिन मिट्टी ढोने वाले
रुलदु का बूढ़ा बैल मरा
उस दिन बस्ती में
कितनी जल्दी रात घिर आई थी
संझा तक—
किसी से कौर तोडते बना नहीं था
कितने ही दिन—
तुलसी का बिरवा रोया था
उस दिन मिट्टी ढोने वाले रुलदु का बूढ़ा बैल
मरा नही था
सबकी नम आखे यह समझ रही थीं
नंगी पीठ पर
भूख के चाबुक खाते-खाते
मानो रुलदु ने दम तोड़ दिया हो !

पिता, रुलदु कुम्हार का असली दु:ख था
सीलखाई
खस्ताहाल दीवारों का भी
अपना दु:ख था
उस दु:ख की तस्वीर खींचने
की ताकत
भला किसमें थी ?

पिता, अब तुमको क्या समझाऊं
तेरा बेटा अब बड़ा हो गया
सरकस के जोकर की मानिन्द
ऊपर से हंसता/भीतर से रोता है
बस्ती के बानर की भांति

कूद फांदकर
कभी टेलीफोन की घंटी सुनता है
कभी वडे-वडो के पास बैठकर
कविता पर बहस करता है
देखो पिता
अब उसके वालों में भी
तुम्हारी ही भांति
धूप उतर आई हैं !

पिता, कितने वरस हो गए घर छोड़े
लेकिन ऐसा क्यों है
सपना अब भी
सिर्फ़ उसी वस्ती का आता है
वही अपढ़/मैली कुचैली
गलीज़ वस्ती
जिसमें मैंने
अपनी मसें भीगतीं देखीं !

पिता/कितने वरस हो गए
तुमसे वतियाये
इसलिए तुमसे ढेर सारी वातें कर लीं
पिता/मैंने रात लिखी जो कविता
अगली बार
फिर कभी सुनाऊंगा !

जिसे देखकर अवसर लगा
हाय दुःख भी
कितना सुखकर, मनोहार

तुम्हे तो याद ही होगा f
जिस दिन मिट्टी ढोने वा
रुलदु का बूढ़ा बैल मरा
उस दिन बस्ती में
कितनी जल्दी रात घिर
संझा तक—
किसी से कौर तोड़ते व
कितने ही दिन—
तुलसी का बिरवा रोय
उस दिन मिट्टी ढोने वा
मरा नही था
सबकी नम आखे यह
नंगी पीठ पर
भूख के चाबुक खाते-र
मानो रुलदु ने दम तो

पिता, रुलदु कुम्हार
सीतखाई
खस्ताहाल दीवारों व
अपना दुःख था
उस दुःख की तस्वीर
की ताकत
भला किसमें थी ?

पिता, अब तुमको क्य
तेरा बेटा अब बड़ा
सरकस के जोकर की
ऊपर से हंसता/भीतर
बस्ती के बानर की

बाहर सड़कें हैं

वाहर सड़कें हैं/रेत है/चिपचिपी धूप है
जो कुछ है/यहां है/घर में है

इस घर में तुम हो
खुशबू है तुलसी-चन्दन की
खनक है तुम्हारी सतरंगी चूड़ियों की
तुम्हारी आंखों के सात रंगों से
गमकती हुई सुवह/शामें हैं
इस घर में मैं हूं...
मेरे और तुम्हारे वोलों में
गति है जीवन के हर रंगरूप की!

इस घर में हम तुम दोनों हैं
सव कुछ तो इस घर में है
इस घर के वाहर भी जो है
वह इसकी ही छाया है
वाहर का हर स्वर
हम दोनों के भीतर से होकर
इस घर में—
जव चाहा तव आया है
घर का भी/वाहर का भी
जो कुछ है इस घर में है !

सच तो यह है—
मेरा हर रास्ता अव तुम तक आता है
मैंने लौट-लौटकर
फ़िर वापस तुम्हीं तक आना है

वाहर सड़कें हैं/रेत है/चिपचिपी धूप है
जो कुछ है/यहां है/घर में है

यह दुनिया

यह दुनिया अब विश्वास करने के काबिल नहीं रही
गांधी का कत्ल कर दिया है फिर गांधी के ही अनुचरों ने !

बादलों में धुलते हरे रंग में भीगते पेड़
आज ठूंठ बने खामोश अपनी थूनी पर खड़े हैं
सूरज जैसे खून सने चाकू की तरह
आसमान पर टंगा है
प्रेम/अहिंसा और शांति के आरपार
पड़ गई है दरार !

पृथ्वी की समस्त घृणा
नदियों में बहकर
सड़कों पर फैल चुकी हैं
मेरे शरीर के रक्त की/एक-एक बूंद
देश के काम आयेगी/यह
—घोषणा करने वाली सोनचिरैया
वापिस लौट चुकी है/किसी अदृश्य लोक को
शांति का सूरज छिप गया है/झाड़ियों में
फिलवक्त कुछ भी होने को नहीं बचा है.
किसी जर्जर बाइस्कोप की तरह
धरती घिघौने दृश्य बार-बार दिखा रही है

आदमी का जो लहू/बह रहा है धरा पर
यह जाने कौनसी बी
प्रतिकृति है आदिम इतिहास की ?
लेकिन मुझे है पूरा यकीन
गांधी का कत्ल
सदैव एक और गांधी को जन्म देता है

यह दुनिया अब विश्वास करने के काबिल नहीं रही
गांधी का कत्ल कर दिया है फिर गांधी के ही अनुचरों ने !

बाहर सड़कें हैं

वाहर सड़कें हैं/रेत है/चिपचिपी धूप है
जो कुछ है/यहां है/घर में है

इस घर में तुम हो
खुशबू है तुलसी-चन्दन की
खनक है तुम्हारी सतरंगी चूड़ियों की
तुम्हारी आंखों के सात रंगों से
गमकती हुई सुवह/शामें है
इस घर में मैं हूं…
मेरे और तुम्हारे बोलों में
गति है जीवन के हर रंगरूप की!

इस घर में हम तुम दोनों हैं
सव कुछ तो इस घर में है
इस घर के बाहर भी जो है
वह इसकी ही छाया है
बाहर का हर स्वर
हम दोनों के भीतर से होकर
इस घर में—
जव चाहा तव आया है
घर का भी/वाहर का भी
जो कुछ है इस घर में है !

सच तो यह है—
मेरा हर रास्ता अव तुम तक आता है
मैंने लौट-लौटकर
फिर वापस तुम्हीं तक आना है

वाहर सड़के है/रेत है/चिपचिपी धूप है
जो कुछ है/यहां है/घर में है

बानर-नाच

डुगडुगी दायें तो वानर दायें
डुगडुगी बायें तो वानर बायें
डुगडुगी के इशारे पर वानर नाचे
डुगडुगी की भाषा वानर बांचे

वानर का पेट पीठ से सटा है
क्यों न हो
भरपेट खाए तो रस्सी तुड़ाकर भाग न जाये
यही तो नहीं चाहता
डुगडुगा वाला
जो डुगडुगी के इशारे पर बानर को नचाए

डुगडुगी वाला चाहता है
वानर मर-मरकर जीता रहे
उसी के दिए हुए को
खाता और पीता रहे
और इस तरह डुगडुगी वाले का
पेट मोटा करता रहे !

मैना

मेघाच्छन ग्राकाश से
पानी वरस रहा है
'मैना का ब्याह हो रहा होगा'
कहता है रामखिलावन !

कहता है रामखिलावन
मैना का एक पंख
दिन है
एक पंख/रात

चोंच में
जो तिनका है
वह तिनका
तिनका भी है
ग्रौर घर भी

जैसे—
मैना/धरती भी है
ग्रौर ग्राकाश भी

मेघाच्छन ग्राकाश से
पानी वरस रहा है
'मैना का ब्याह हो रहा होगा'
कहता है रामखिलावन !

हरे बांसों के जंगल से

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता
न मेरी…
न तुम्हारी…

हरे बांसों के जंगल से
एक दिन अचानक
यूं ही अंतिम बादल भी बह जाएगा !

फिर किसी दिन अकस्मात्
चौंककर देखेंगे हम तुम :
अरे खिड़कियों पर
यह पतझर कौन रख गया है !
किसने ये ढेर पीले पत्ते ला धरे हैं !!

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता
न मेरी…
न तुम्हारी…

समय फिर बदलेगा

बुझ गई बीड़ी के टुकड़े को फिर से सुलगाता
एक शख्स
जून की दोपहरी से/गमछे से सिर को बचाते हुए
पातविहीन नीम के पेड़ को
ताकता रहता है पूरी दोपहर
मन में उफनते पीड़ा के तूफान
चेहरे पर उदासी के बुदबुदे बन
अंकित हो जाते हैं
हड्डियों को चीरती दुपहरी के समक्ष
वह आंखें मिचमिचाता हुआ
एक ही बात बोलता है
समय फिर बदलेगा

चौराहे के बीचों-बीच
कुछ लडके चिपकाते हैं नया पोस्टर
पुलिस की लाठी
उधेड़ देती है उनकी पीठ
पड़ोस में एक बच्चा बेआवाज रोता है
वह शख्स
अपने गमछे के बीचों-बीच
सहेज कर रखा हुआ
रोटी का एकमात्र टुकड़ा निकाल कर
बच्चे को देने के लिए
तेजी से लपकता है

वह फिर एक बात बोलता है
प्रत्यंचा की तरह तन गया है मौसम/अब
यह समय फिर बदलेगा

छमिया केले बेचती है

छमिया—
तड़के उठती है
हाथ मुंह धोकर
मंडी जाती है
केले खरीदती है
फिर उनसे डलिया सजाती है

छमिया—
पुल के नीचे
दुकान लगाती है
छमिया केले बेचती है

छमिया अपने गोद के बच्चे को
अपने पास ही—
जमीन पर सुलाती है
बच्चा जब रोता है
तो छमिया ब्लाउज में से अपनी छाती निकाल कर
उसे चुसाती है

छमिया खूबसूरत तो नहीं है
पर गठीले बदन की जवान औरत है
छमिया अपने बच्चे को
छाती चुसा रही होती है
होठों-ही-होठों में
कोई लोरी गा रही होती है
तब पुल के नीचे घूमते लोग
साईकल, रिक्शों की तरह उसके गिर्द जमा होने लगते हैं
और वे केले छू-छूकर

छमिया से उनका दाम पूछते हैं
छमिया प्रत्युत्तर में हंसती है, 'खी'''खी'''खी'
फिर कहती है
'ले लो बाबू
सस्ते भाव लगा दूंगी
दाम का क्या है !'

केले खाते हुए
लोगों की नजरें
छमिया की नंगी छाती पर
बेलगाम घोड़े की तरह
दौड़ती रहती हैं
लोगों की भीड़ छंटने के बाद
छमिया पिच्च से जमीन पर थूक देती है

बाजार वाले कहते है—
छमिया भली औरत नहीं है/पूरी गश्ती है साली
छमिया भी जानती है—
कि लोग उसके बारे में क्या कहते हैं
पर मूल मुद्दा तो रोटी का है
और दिन में दो दफ़े तो रोटी उसे भी चाहिए ही
इसलिए छमिया अब लोगों की बातों को—
एक कान से सुनती है
दूसरे कान से निकाल देती है !

संझा होती है
छमिया सिर पर
अपनी खाली/अधखाली डलिया रख
बच्चे को गोद में उठा—
अपने घर को जाती है ।

छमिया केले बेचती है

छमिया—
तड़के उठती है
हाथ मुंह धोकर
मंडी जाती है
केले खरीदती है
फिर उनसे डलिया सजाती है

छमिया—
पुल के नीचे
दुकान लगाती है
छमिया केले बेचती है

छमिया अपने गोद के बच्चे को
अपने पास ही—
जमीन पर सुलाती है
बच्चा जब रोता है
तो छमिया ब्लाउज में से अपनी छाती निकाल कर
उसे चुसाती है

छमिया खूबसूरत तो नहीं है
पर गठीले बदन की जवान औरत है
छमिया अपने बच्चे को
छाती चुसा रही होती है
होठों-ही-होठों में
कोई लोरी गा रही होती है
तब पुल के नीचे घूमते लोग
साईकल, रिक्शों की तरह उसके गिर्द जमा होने लगते हैं
और वे केले छू-छूकर

छमिया से उनका दाम पूछते हैं
छमिया प्रत्युत्तर में हंसती है, 'खी···खी···खी'
फिर कहती है
'ले लो बावू
सस्ते भाव लगा दूंगी
दाम का क्या है !'

केले खाते हुए
लोगों की नजरें
छमिया की नंगी छाती पर
वेलगाम घोड़े की तरह
दौड़ती रहती हैं
लोगों की भीड़ छंटने के वाद
छमिया पिच्च से जमीन पर थूक देती है

वाजार वाले कहते हैं—
छमिया भली औरत नहीं है/पूरी गश्ती है साली
छमिया भी जानती है—
कि लोग उसके वारे में क्या कहते हैं
पर मूल मुद्दा तो रोटी का है
और दिन में दो दफे तो रोटी उसे भी चाहिए ही
इसलिए छमिया अव लोगों की वातों को—
एक कान से सुनती है
दूसरे कान से निकाल देती है !

संझा होती है
मिया सिर पर
खाली/अधखाली डलिया रख
ग
।

छमिया
तड़के उठती है
हाथ-मुंह धोकर
मंडी जाती है
केले खरीदती है
फिर उनसे डलिया सजाती है

गिरती हुई बर्फ़ को देखना

प्रवासी पक्षियों की तरह
वे फिर लौट आए है पहाड़ों पर
वे जनवादी कवि है
वातानुकूलित कमरों में टहलते हुए
पारदर्शी शीशों में से
गिरती हुई वर्फ़ को देखते हुए
वर्फ़ काटने वाले/हाथों की तकलीफ के बारे में सोचना
उन्हे जनवादी कविता लिखने की
प्रेरणा देता है।

लेकिन मुझे—
गिरती हुई वर्फ को देखना
कभी अच्छा नहीं लगता
जब-जब वर्फ गिरती है
मुझे पंख-पंख हुई चिड़िया की याद आ जाती है
अपने बदरंग हुए कोट
मुन्नू की तार-तार हुई
जुरावों के बारे में
सोचकर/उदास हो जाता हूं।

रात फिर वर्फ गिरी है
जरूर चिडिया पंख-पंख हुई होगी
और मैं बुझी बीड़ी को फिर से सुलगा कर
वर्फ से लडने की मुद्रा में हूं!

यह कैसी पदचाप है

यह कैसी पदचाप है
इस खौफनाक रात में ?

कहां से आ रही है
तुम्हारी बेबस-सी चीख ?

जैसे समुन्दर दहाड़े मार रहा हो
और उससे जूझ रहा हो
पीपल का अकेला निहत्था पत्ता !

यह मेरा दु:स्वप्न है
या कि सच है इस रात का ?

बाहर रात के खौफनाक साए हैं
शहर मुझ तक सिमट कर छोटा हो गया है
नहीं/तुम नहीं हो/अस्पताल के रिकवरी रूम में
तुम यहीं कहीं हो/मेरे आसपास
बर्तन मांजती/आटा गूंथती
घर बुहारती/कपड़े फींचती
चूल्हा फूंकती/सोई हुई हो !

फिर उभर रही है पदचाप
इस खौफनाक रात में ?

जैसे नश्तर चल रहे है
तुम्हारे जिस्म के आर-पार
फलदार पेड़/सागौन के दरख्त
कट रहे हैं
जैसे समुन्दर दहाड़े मार रहा हो

तुम इतना कायाकल्प कर देने वाला अमृत
कहा से ले आती हो
उंगलियों की पोर से चूता हुआ
तुम्हारे जाने पर क्या रहेगा/मेरे आसपास
पीले पत्ते/उदास हवा और रेत
फिर—
पूर्व वाली खिड़की की चौखट से सूरज उतर कर
समुद्र की लहरों में अन्तर्ध्यान हो
सोनमछरी मे तब्दील हो
मेरी आंखों मे नही छलांगेगा
तब मेरे आसपास होगी
सिर्फ खुशबू की राख...
यह बताती हुई/कि
जब तुम अपनी चमकदार आंखों के साथ
होती हो मेरे आसपास
तो कैसे मेरे भीतर
एक नीला समुद्र हहराने लगता है !

रामलाल की दुनिया......

रामलाल की दुनिया में
रोज एक नया भूकंप
एक नई दुर्घटना
और रोज एक दुःखद इतिहास

मगर घूसखोरी करती औरतों को नहीं कोई दुःख
लोग वैसे ही अपने-अपने काम पर जाते हुए
लड़कियां मटरगश्ती करती हुई
और बच्चे खाते हुए आइसक्रीम

और लोगों की भीड़ से घिरा रामलाल
इस साल के बचे-खुचे दिन गिन रहा है
शायद अपनी जिंदगी के भी
अभी परसों रेल की पुलिया के पास
मिली उसकी बीवी की अधकटी लाश

नहीं/मंत्री महोदय को नहीं/कोई दुःख
इंपोर्टिड गाड़ी में बैठकर/स्वदेशी कपड़ों में
जाते हैं सचिवालय
दफ्तर में स्टेनो/घर में बीवी मनोरंजन के लिए

मंत्री महोदय को कहां फुर्सत है
शीतलहर में मरे बच्चों की
सूची देखने की
भले ही हो वे स्वास्थ्य-मंत्री
पर कहा फुर्सत है
उनके पास/उनका दु.ख सुनने की
जो दवा के नाम पर दिए गए जहर से
सरकारी अस्पतालों में दम तोड़ रहे है

रामलाल के लिए नहीं
आजादी का कोई खास मतलब
उसकी तो आधी सदी
ऐसे ही बधिया किये हुए बैल की तरह
बोझ ढोते-ढोते बीती है

और तभी तो हर साल
पन्द्रह अगस्त को जब
लालकिले पर तिरंगा लहराता है
तो वह फिक् से हंस देता है

रामलाल की दुनिया में
रोज एक नया भूकंप
एक नई दुर्घटना
और रोज एक दुःखद इतिहास...

जड़ें

आकाश कितना गहरा है
आंकोगी कैसे ?
आंखों से ?
तरु-शिखरों से ?
या फिर धरती पर उनके बनते-बिगड़ते
लम्बे-लम्बे सायों से ?

उसका पता तो इसी से चलेगा
कि हथेलियों पर सूरज उतार कर
हम अजाने द्वीपों में बीज रोप आयें
नदी की चंचल लहरें
जब हमें सीपी सरीखा
गीली रेत में छोड़ जायें
तो हम उजले मोती के रूप में अवतरित हों !

आओ समय की स्लेट पर यह लिखें
तपती रेत में भी/सीपी के गर्भ से
जो उजले मोती के रूप में अवतरित हों
वही हरा है !
उसी की जड़ें गहरी हैं ! !
आकाश जितना गहरा है ! ! !

बासमती

एक पाव भर बासमती दे दो/मालिक
घिघिया कर कहता है किसना

वह ललचाई हुई
आंखों से देखता है
बासमती की लहलहाती हुई फसल

ऐसे ही किसना के बापू की देह से आती थी
खुशबू बासमती की
वे एक दिन खो गए थे
बासमती के खेतों में
जब वे मालिक से/पाव-भर बासमती
मांगने गए थे

किसना खो गया है
बासमती की खुशबू में
लेकिन उसे मिल न रही है बासमती

बासमती के लहलहाते हुए/खेतों की जमीन
किसना के बापू ने गोडी थी
चिलचिलाती हुई दुपहरिया में
फर्लांगों दूर से ला-लाकर/पानी
उसे सींचा था
रात-रात भर
जाग-जागकर/की थी रखवाली
बासमती बढ रही है
बापू की आशीष के नीचे
अलबत्ता बासमती के खेत हैं मालिक के...

किसना बासमती के खेतों के बीच
है कितना अजनबी
बासमती के खेतों के चारों ओर
भटक रही है
उसके बापू की कलपती हुई आत्मा/और
वह पाव-भर बासमती बनकर
किसना की झोली में
बरस जाना चाहती है

मालिक गुस्से से भरा हुआ कहता है
कारिन्दे से/निकालो बाहर इस किसना को
यह टोनागर है
लगा देगा बासमती के खेत को/टोना
मैं उस दिन की इंतजार में हूं
जब किसना फैलाएगा झोली
वह झट से भर जाएगी बासमती से
देखता रह जाएगा मालिक !

ठहरो, थोड़ी देर और ठहरो

ठहरो, थोडी देर और ठहरो
अभी तो सूरज की किरनें है
पेड़ों की फुनगियों पर

अभी तो पिघली है
खामोशी की वर्फ
शब्दों के जलते कोयलों की आंच से
उसे तेज होने दो
ताकि मैं नदी वन वह सकूं

मैं जानता हूं
आंच और रोशनी से
किसी को वेदखल नही किया जा सकता
पर शब्दो से दीवार कहा खड़ी होती है
ऐसी दीवार जो किसी का घर हो सके

ठहरो, थोड़ी देर और ठहरो
अभी तो सूरज की किरनें है
पेड़ों की फुनगियों पर
और एक-एक फुनगी
अलग-अलग दीख रही है
अपनी आंखों में छिपी खुशबू को
मेरे भीतर उतरने दो
लो मैं चंदन हुआ जा रहा हूं
तुम अगर कहो तो—
तुम्हारे जिस्म से अपना जिस्म रगड़ कर
तुम पर चंदन बनकर फैल जाऊं
अच्छा जाने दो
शरीर पर चन्दन का लेप
तुम्हें पसन्द नही !

ठहरो, थोड़ी देर और ठहरो
देखो हवा
कितनी शीतल है
और रास्ता जैसे बाहर से मुड़कर
हमारी धमनियों के जंगल में खो गया है
और हमारी सांसों की प्रतिध्वनि
हमें कैसे सम्मोहित किए जा रही है

ठहरो, कुछ देर और ठहरो
इतनी देर तो जरूर ही
कि जब तुम घर पहुंच कर
सोने के लिए विवस्त्र बिस्तर पर लेटो
तो एक परछाई दीवार से सटी देख सको
और उसे पहचान भी सको

ठहरो, थोड़ी देर और ठहरो
अभी तो सूरज की किरनें हैं
पेड़ों की फुनगियों पर
उन्हें हट जाने दो !

चुपचाप चलो राजपथ पर

चुपचाप चलो राजपथ पर
हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं

अभी-अभी सोए हैं
जिरहवख्तर से लैस/खुंखार घुड़सवार
जाग गए तो गजब ढा देंगे
ठीक बायें से चलो बेग्रावाज
ताकि राजपथ को भी लगे कि उसपर
आदमियों की भीड़ नहीं
नदी बह रही है

जो भी तुमने रास्ते में देखा/सुना
दीवारों पर लगे पोस्टरों में पढ़ा
घर पर जाकर उसपर मनन मत करो
जब देश सुनहरे कल की ओर बढ रहा हो
तब देखी/सुनी/पढी हुई बातों पर
मनन करने की आदत पालना
देशद्रोह से कम संगीन अपराध नहीं !

पालना ही चाहते हो तो कबूतर पाल सकते हो
जो दाना चुगते रहें/और
बन्द पिंजरे में घूमते रहने की
सही प्रेरणा देते रहें !

चुपचाप :लो राजपथ पर
हम सुनहरे कल की ओर बढ रहे है

आपको संबोधित : पांच कवितायें

एक

गोलियों के छर्रे
लिख रहे हैं कोई इबारत
दीवार पर
मैं कब से देखे जा रहा हूं/यह
ईंटें छोड़ रही हैं अपनी जगह
लकड़ी को दीमक चाट रही है
अरे भई, मौसम का यह कैसा आलम है
कि आसमान पर तन रहा है
बारूद का चंदोवा
आदमी की भाषा
गुर्राहट में बदलती जा रही है !

धीरे धीरे मरघट में बदलता जा रहा है
मेरा शहर
और आप चुप हैं

दो

पिछले बरस भी झरे थे नीम के पत्ते
इस बरस भी झरेंगे
हम फिर मिलेंगे नंगे पेड़ों के तले
पारे की तरह साबुत दिनों को
हथेलियों में सहेजने का भ्रम पालते हुए
देखते रह जायेंगे एक दूसरे का मुंह
एक दूसरे की आंखों में तलाशेंगे
वह कविता-पंक्ति
जो मेरी रामायण
और तुम्हारे ग्रंथ साहब में

मौजूद है/एक ही संदर्भ में
अब भी !

तीन

वहुत दिनों की वारिश के वाद
निकला है फिर सूरज
कविता की तरह/दहकता हुआ लाल सूरज
और मेरा मन कहता है
कि इस खौफ़जदा मौसम में भी
डरने की तब तक कोई गुंजाइश नहीं
जब तक लाल दहकती कविता की तरह
उदित होता है रोज लाल दहकता हुआ सूरज
तब तक/दसों दिशाओं में/यकीनन
पृथ्वी सुरक्षित है !

चार

इन कठिन दिनों में
मेरी सबसे बड़ी पूंजी है
मेरी अलिखी कविता
मेरी छाती में बंद मेरी सबसे बड़ी पूंजी
जिसे मै खौफ़जदा मौसम से
लड़ने के लिए/बतौर तेजधार हथियार के
रोज इस्तेमाल करता हूं
सोचता हूं एक दिन तड़के उठूं
और जहां धरती सबसे ज्यादा भुरभुरी है
वहां इसे रोप आऊं !

इस तरह
अलिखी कविता का उगेगा जो पेड़
वह यकीनन
विषाक्त मौसम के/विष को

अपनी जड़ों के भीतर समोने की
शक्ति रखेगा !

पांच

फिर द्वार पर दस्तक दी
घुमन्तु हवा ने
शायद फिर कोई आया है
पूछता हूं हवा से 'कौन है?'
'कोई नहीं'
कहती है घुमन्तु हवा

पर घुमन्तु हवा का क्या
वह तो दस्तक देती ही रहती है समय/बेसमय
शहर में जब कोई हत्या होती है/तो
चीख पड़ती है
हो जाती है ऐसी निढाल
जैसे उसका कोई सगा मर गया हो
पर कई बार
जब वाहेगुरु
और राम-राम के मंत्र
गूंजने लगते हैं फिज़ा में
कभी यक-ब-यक एक साथ
तो हवा की सांसों में उतर आती है
एक खुशबू
आप चाहें तो
इसे वासन्ती हवा कह सकते है

अब देखिए न साहब
पिछली रात बलवाईयों ने
जब शहर की दीवारों पर
गोलियों के छर्रों से लिख दी थी कोई इबारत
तब हवा ने कैसे

किसी बावरी योगिनी की तरह
दी थी द्वार पर जोरों से दस्तक !

मैं हड़बड़ा कर उठा
भागता हुआ दरवाजे तक गया
देखा हवा बदहाल-सी
किसी योगिनी की तरह
हाथ में लिए खाली खप्पर
द्वार पर खड़ी है ।
जनाब
हवा योगिनी भी बन सकती है
इसे कौन स्वीकारेगा
पर है यह हकीक़त
कि हवा तितली के रंगों
और बारूद के छर्रों के बीच
एक छोटा-सा पुल है
और एक खुशनुमा सुबह की उम्मीद
अभी भी मौजूद है
हवा के दिल में !

नदी

नदी !
तुमने समुन्दर को
और सैलानियों ने तुम दोनों को
अपनाया
नदी/सच बताओ
क्या सैलानी तुम्हारे घाट पर वैसे ही नहीं उतरते
जैसे स्टेशन पर लोग !

मामूली आदमी

हर वक़्त हर लड़ाई के विरुद्ध
ख़तरे के सायरन-सा बजा है
एक मामूली आदमी !

हर वक़्त कुछ घटाकर
बाकी बचा है
एक मामूली आदमी

मामूली आदमी हर वक़्त
मामूली सी जिंदगी जीने के लिए
हैरतअंगेज हरकत करता आया है

पांव न हों
तो कोहनियों से चल लेता है
जीभ न हो
तो आंखों से बोल लेता है
मामूली आदमी

मामूली आदमी अकेला होता है
तो घबराता नहीं
अपने हाथों को महसूसता है
और जूझ पड़ता है
मामूली आदमी

आमतौर से गुस्साता नहीं
ठंडा होता है मामूली आदमी
और कभी गुस्साए तो
भूकंप आ जाता है
सत्ता की धज्जियां उड़ा देता है
मामूली आदमी

मामूली आदमी/मामूली नहीं
इतिहास के हर अध्याय का सरगना है
पृथ्वी का समस्त वैभव
उसके होने से बना है

हर वक़्त हर लड़ाई के विरुद्ध
खतरे के सायरन-सा बजा है
एक मामूली आदमी !

बच्चा : तीन संदर्भ

एक

उसे याद था/ठीक-ठाक कितनी वार
खिलौने मांगने पर/उसे मिले इमली के चिए
कित्ती बार पतलून की थेगली दिख जाने पर
अपनी क्लास में वह गेया
और छुट्टी होने पर चल दिया—
घर की तरफ/चुपचाप
एक-एक कर सारे सपने उसे याद हैं
जिनमें लक-दक/रेशमी चेहरों वाले
वच्चे-ही-वच्चे दिखते थे
उसे अपनी ओर आते हुए !
उसे जीभ दिखाते
उस पर विद्रूपता से हंसते हुए !!

धीरे-धीरे उसकी मसें भीगीं
पहले काली हुईं/फिर उनमें धूप उतरने लगी
अब वह सील खाई गर्दन
और पसीजा चेहरा लिए हरदम हंसता है
और उसके पास सपनों की जगह
वदवुआती फाइलों के रैक हैं
जहां कभी-कभी सुन पड़ती है
खुजली वाले कुत्ते की किकियाने की आवाज़ !

दो

सुनते हुए
तुम्हें, मेरे वच्चे
मैं पाता हूं खुद को
समुन्दर के भीतर

जहां अभी भी मौजूद है
परियों की रानी/जलपरी
और चित्तीदार परों वाली
रंग-बिरंगी मछलियां

सुनते हुए
तुम्हें मेरे बच्चे
मैं पाता हूं खुद को
सपनों के उस मखमली प्रदेश में
जहां नजरों में हर सिम्त
खिले रहते हैं इन्द्रधनुष

सुनते हुए
तुम्हें मेरे बच्चे
मुझे लगता है
जैसे तुम्हारे तुतलाए स्वर में ही
प्रवाहमान है
वैदिक ऋचाओं का स्वर !

सुनते हुए
तुम्हें, मेरे बच्चे
मैं पाता हूं खुद को
समुन्दर के भीतर !

तीन

बच्चे !
तुम्हारे इस जन्मदिन के खुशगवार मौके पर
क्या दूं उपहार
मेरा वर्तमान तो है
पत्तों से खाली हुआ नंगा पेड़
निर्दयी सूरज की धूप से तपा हुआ दिन
तो यही

धूप से तपा हुआ दिन
लाया हूं उपहार में तेरे लिए

आह, तू न समझेगा
अभी धूप से तपे हुए दिन का मतलब
तेरी इस निश्छल हंसी
और मेरे इस उपहार में
युगों का अन्तर है

पर मैंने देखे है
तेरी इस निश्छल हंसी की
प्रश्नभरी मुद्रा के अंधियारे तल में
वे अनेक अधूरे पथ
जो तेरे सपनों की मखमली जमीन में
अंकुरायी कोंपलों की/क़त्ल के
गवाह है
खिंची हुई काजल की अनगिन लक्ष्मण रेखायें
और तैरती हुई हवाओं में
बहुत-से अजन्मे पुल
जिनसे होकर तुझको
अपनी दूधिया हंसी की उम्र में ही
पत्तों से खाली हुए नंगे पेड़ के
अयाचित अर्थों तक जाना है

मैं तो हूं उदास
तुम्हें कोई भी बेशकीमती उपहार
न देने की वजह से
पर तुम क्यों हो उठे उदास
मेरे नन्हे फूल
क्या देख लिए हैं तुमने मेरे सूर्यहीन कंधे
क्या धूप में तपे हुए दिनो की
असलियत जान ली है तुमने ??

किन्तु तुम न हो उदास
मेरी तो सारी उम्र
तेरे ग्रोस भरे होंठों पर
तितली के पंखों सी धूप
परोसने में ही बीत जाएगी
पर मेरे बच्चे
मेरा वर्तमान है
धूप से तपा हुम्रा एक दिन
ग्रपने पपड़ाए होंठों की
यह सच्चाई भी तो बतानी ज़रूरी थी
मेरे लिए !

पारु कहता है

पारु कहता है
हमारा घर
हवा मे हिचकोले क्यों खाता है ?
कार्निवाल की तरह
कभी यहा/कभी वहा
क्यों तनता है
एक जगह स्थिर क्यों नही रहता ?

पारु कहता है/कि
हमारे घर मे खिड़कियां क्यों नही हैं ?
सूरज उतरने में
क्यो अपनी हेठी समझता है ?

पारु कहता है/कि
हम एक टपकते हुए घर में रहते हैं
कभी जब
होती है बरसात
तो घर में
सूखी जमीन का कोई साबुत टुकड़ा
क्यों दिखाई नही देता ?

पारु कहता है
हमारा घर
हवा में हिचकोले क्यों खाता है ?

मेरे भीतर का तानसेन

मेरे भीतर—
कहीं एक तानसेन पागल हो गया है

सुवह/दोपहर/शाम/रात
बस दीपक-राग छेड़ता रहता है
हर क्षण—
उसका कंठ/स्वर उगलता
थकता नहीं

मैं क्या करूं
उसके दीपक-राग का स्वर
सुनते-सुनते मैं घवड़ा गया हूं
कहां से लाऊं
सोंधी मिट्टी से वने वड़े-वड़े चौमुखे दीपक ?
कुछ पातविहीन पेड़
अपनी डालों को संभाले
थूनी पर कांपते-से खड़े हैं
यही क्या कम है !

मुझे मालूम है—
वह अकेला है
और थका
अपने ही स्वर की
प्रतिध्वनि के सहारे
वह जिए जा रहा है
इस उम्मीद में
अभी कोई आएगा
उसके स्वर में अपना स्वर मिलाएगा
और अपनी-अपनी थूनी पर
कांपते-से खड़े पातविहीन पेड़
पत्तों और फूलों से लद जायेंगे !

उसके दीपक-राग का स्वर
वह नहीं जानता
मैं जानता हूं
अब दिन-पर-दिन कमजोर पड़ता जा रहा है
कुछ दिनों के बाद
इतना शिथिल हो जाएगा
कि गुम्बदों से टकराकर
प्रतिध्वनि बनने की
उसकी सामर्थ्य चुक जाएगी

तानसेन अब नहीं रहेगा !

मेरे भीतर का वह पागल तानसेन
तब मुझे पागल कर जाएगा
मैं तब थूनी पर खड़े
कांपते/पातविहीन पेड़ों की छांह नापता फिरूंगा !
खामोश...
और मेरे पांवों के नीचे
सूर्य-भट्टी में उबलती रेत होगी !
सिर्फ रेत! !

वह

वह रोज
कपड़े की एक पोटली में से
हरे कांच की चूड़ियां निकालती
श्रौर सोचती कि इन्हें उस दिन पहनेगी
थोड़ी देर बाद उसी पोटली में
फिर उन हरे कांच की चूड़ियों को—
सहेज कर रख देती

जब कभी होती पास-पड़ोस में शादी
उसका बदन तवे-सा तपने लगता
श्रौर भयंकर दर्द से
उसका पोर-पोर ऐंठने लगता

वह सोने से पहले
हर रात देखती एक नीला घोड़ा
जो श्रासमान से उतरता था
श्रौर उसे दूर ले जाता था

उसने शीशे में देखे एक दिन
श्रपने सिर में चांदी के कुछ तार !
उस रात नीले घोड़े की टापों ने
उसे रौंद डाला ! !

फिर न कहना

मुझे समुन्दर दिखाया
तो मैं समुन्दर बन जाऊंगा
निश्चित !

फिर यह न कहना
यह ग्रादमी तो था/चूहे की जात का
यह समुन्दर कैसे बन गया ?

फिर न कहना
हमारा ग्रादमी समुन्दर बन गया
हमी ने समुन्दर दिखाया था उसे

मुझे समुन्दर दिखाया
तो मैं समुन्दर बन जाऊंगा
निश्चित !

ग्रौर चूहे की जात का/ग्रादमी होने पर
भरोसा न करते रहे श्रीमान
मैं समुन्दर बना/तो/सबसे पहले मेरा रुख
तुम्हारी खिड़की की ग्रोर ही होगा !

मुझे समुन्दर दिखाया
तो मैं समुन्दर बन जाऊंगा
निश्चित !

गरजने वाले बादल

बादल—
गरजने के लिए आए थे
गरज कर चले गए

बस्ती के लोगों ने सोचा था
बादल है
गरजेंगे···
और फिर बरसेंगे
ताल तलैया सब भर जायेंगे !

प्यासी धरती की कोख फिर फलवती होगी !!

इसलिए जब वे आये थे
तब सूखे पेड़ों ने
अपनी नंगी शाखें हिला-हिलाकर
उनका स्वागत किया था

पर वे—
बादल थे/मात्र
गरजने आए थे
और अंततः
गरज कर चले गए

वसंत : एक चित्र

नदी की चंचल
और शोख लहरों ने
आगे कर दिए होंठ
वसंत फिर आ गया !

वासना के विधर्मी क्षण
जब लहू उत्तप्त हो उठता हो
तो कितने पवित्र लगते हैं
वक़्त का रेला—
कैसे पीछे छोड़ जाता है
हर्ष और शोक—दोनों को
और कैसा लगता है यह जानकर
जिस फूलों वाली लड़की के साथ रहे हम उम्र भर
उसे ठीक तरह से जान भी न पाए !

जब भी विदा लेगा फूलों से वसंत
अपने गीत मुझसे वापस मांगेगा !!

शब्द बनते हैं उत्सव

जहां से शुरू होता है
तुम्हारी आंखों का सम्मोहन
वहीं से शुरु होता है समुद्र !

दिशायें
गमक उठती है खुशबू से
शब्द बनते है उत्सव
अनंत पानी मे
सैकड़ों सूरज
झिलमिल करते हैं
सीपियां खुलती है
शंख बजते है
और तुम्हारी आंखों के सम्मोहन में
उतरता है समुद्र !

तुम्हारी आंखों में
कई सूरजमुखी खिलते है
शब्द बनते है उत्सव
सैकड़ों सूरज झिलमिल करते है

जहां से शुरु होता है
तुम्हारी आंखों का सम्मोहन
वहीं से शुरु होता है समुद्र !

तपते हुए दिनों के बीच

आज कोई और मुर्दा जल रहा है यहां
कल यही जला था शंकरलाल के पिता का मुर्दा
आसमान में फिर हाथी-घोड़ों की सेना सन्नद्ध है
किसी अजानी दिशा में आक्रमण के लिए
यहां धरती पर जल रहा है मुर्दा
अचार्ज पढ रहा है मंत्र
रात को मिली हुई दक्षिणा से वह पिएगा शराब
और धरती पर थूककर मां की गाली देते हुए कहेगा
आजकल मुर्दों के धंधे में भी मंदा है
समुरे धीरे-धीरे मरते हैं !

आसमान में वादलों के हाथी-घोड़ों का/पीछा करती दृष्टि को
रोककर सोचता है शंकरलाल
'दिमाग जव फिजूल सोचने लगे
तब उसकी रास ढीली छोड़ दो वेटा !'
कहा था एक दिन गाव के
सवसे वड़ी उम्र के वुजुर्ग ने
तब से वह रुक-रुककर बीच-बीच में
छोड़ देता है दिमाग को खुला/निर्बंध
मुक्त भाव से भटकने के लिए
पर दिमाग का काम है सोचना/वह सोचेगा तो जरूर
वह आसमान में वादलों के वनते-बिगड़ते
हाथी-घोड़ों के वारे में सोचे
या फिर सोचे
सुबह का इंतजार करती
अनगिन आदिम आंखों के वारे में
या चूल्हे और चक्की से जुड़ी
धुआयें चेहरों वाली
युवतियों के वारे में/जो

मिट्टी से चल्हा पोतते-पोतते
दीवारों पर सांझी बनाते-बनाते
स्वयं मिट्टी बन गई है !

शंकरलाल सोचता है
तब कैसा लगता होगा
जब आदिम मानव रहता होगा गुफा में
भूख लगने पर करता होगा जंगली जानवरो का शिकार
और प्यास लगने पर जाता होगा नदी की शरण में
तब आग छिपी होगी
चकमक के पत्थर में
समुन्दर के कंठ में
पेडों की जड़ो में
पर्वतों के उदर मे

आग पिता के भीतर भी
सुलगती हुई कविता थी
वे अग्नि-पुत्र थे
मैं उनका
—हंसता है शंकरलाल
रोज दफ्तर की सीढ़ियां चढ़ते हुए

दो बिल्लियों के झगड़े में
कैसे हड़प गया था
उनके हिस्से की पूरी रोटी/चालाक बंदर
सूखी रोटी को नमक और प्याज से निगलते हुए
शंकरलाल ने अंगीठी भपकती मां को सुनाया था यह किस्सा
तभी पिता हांफते हुए आए थे बनिये की हवेली से
ढहती दीवार का सहारा लेकर मां से बोले थे
बनिए ने बना दिया है सौ का हजार
और हमारी पुश्तैनी जमीन का आखिरी टुकड़ा
उसने रख लिया है रहन

उस क्षण पिता की आंखें बन गईं थीं आग
पर यह आग कब तक सुलगती रहेगी भीतर-ही-भीतर
वह कब पक्षी बनकर आकाश में उड़ेगी
वह कब इन्द्र का वज्र बनकर/ढहेगी
दरिंदों के सिरों पर
ऊंचे कद की कुर्सियों पर
जो पीती हैं आदमी का लहू
आदमी की अस्मिता को/पहचानती कतई नहीं हैं !

खांसी से बेदम होती मां ने पूछा था
—रात कितनी बकाया है
क्या बजा है अभी
शंकरलाल सोचता है—
वह मां को क्या जवाब दे
वह कैसे बताए कि क्या बजा है
जबकि हर घड़ी उनका ही समय बताती है
ऐसे में 'रात कितनी बकाया है'/पूछने का क्या मतलब है
जबकि सूरज उदित होता है उनके ही संकेत से

सरकारी अस्पतालों में
मरीजों को दवा की जगह
कांपोज के टीके दीए जाते हैं आजकल
—आबादी कम करने का यह भी एक पुरअसर तरीका है
हंस समझकर/जिन्हें भेजा था दिल्ली
वे फिर निकले हैं बगुले
राजधानी में फिर दौर है सूखे का
मौसम को हो गया है/भीषण पक्षाघात
करोड़ों कमजोर लोग
जिनकी आंखों में है जलता हुआ जंगल

संसद-भवन का द्वार थपथपाते हुए पूछ रहे है
—कहां है सरकार ?
और सरकार एशियाड की भव्य सफलता का
जायजा लेने में लगी है
धर्म और जाति के नाम पर
आदमी को आदमी से लड़ाती
गन्ने की तरह कोल्हू में उसकी अदम्य इच्छाओं को पेरती
सब तरफ अंधेरे और उजाले में
अखबारों की सुर्खियो मे उछलती
हमारी ताकत पर खड़ी
सरकार ही तो है
शंकरलाल सोचता है
कितने भोले है मेरी जमात के लोग
सारी दुनिया को देकर ताकत
वे नहीं जानते ताकत क्या है
खडी करके सरकार पूछते हैं सरकार कहा है !

दफ्तर में मिला था
शंकरलाल को उसके दोस्त का टेलीफोन
पिता बीमार है/फौरन घर आ जाओ
वह हो गया था परेशान
महीने की इक्कीस तारीख
उसके पास तो नही किराए के लिए भी पैसे
पिता का इलाज तिसपर कराएगा वह कैसे
वह जब पहुंचा घर
पिता गिन रहे थे आखिरी सांसें
लेकिन उनकी आंखों में सुलग रही थी एक निर्णयात्मक आग
वही आग अब
पिता की आंखों से निकल कर
शंकरलाल की आंखों में समा गई है
और वह दिन-रात लगा रहता है इसी कोशिश में
कि आग का यह गीत लिख दे धरती के छोर-छोर में !

शंकरलाल ने गढ़ी है
इन दिनो एक नई वर्णमाला
वह जहां कहीं भी वच्चों को देखता है इकट्ठा
उन्हें सिखाता है—
'रा' मे 'राम' नही वच्चो
देखना तक जिसे नामुमकिन

'रा' तो 'रोटी' का है
वह गांव के जवानों/वुजुर्गों को समझाता फिरता है
'रा' 'राम' का नही/'रोटी' का है
वह दीवारों पर लगाता फिरता है पोस्टर
'रा' राम का नही/रोटी का है
गांव के लोग भी शंकरलाल की वातों को समझने लगे है/अब
मास्साव भी वच्चों को स्कूल में समझाने लगे है
'रा' राम का नही/रोटी का है
लेकिन मांगने से भी नहीं मिलेगी रोटी
फंसे रहेंगे पांव इसी तरह कीचड़ में
खुशी की तान नहीं छेड़ेगा मौसम
आप से आप हमारे गांव में
सुनो वच्चों की कचियायी आंखें कुछ कह रही हैं
उनकी चिदा-चिदा कमीज और नेकर
स्त्रियों के हाथ-पांवों की नीली नसें
वहुत कुछ समझा रहीं है

पूरी-की-पूरी धरती तप रही है/भट्टी की मानिन्द
इसलिए रात के खिलाफ
तन कर खड़े हो जाओ
हड्डियों का इकतारा वजाओ
वहुत सह चुके 'अव और नहीं'/'एकदम नही'
इस 'नही' की आंधी में/सव कुछ उडेगा
कागजों के पुलिन्दे/ध्वज/कुर्सियें और टोपियें

नींद में कुनमुनाते बच्चों के कानों में
फुसफुसा रही है चिड़िया
अब नहीं रहेगा तुम पर अजगर का साया
एक नींद ले लो और
सुबह होने वाली है
देख पाओगी जरूर तुम/जागने पर
उगते हुए सूरज को

सुभाष रस्तोगी

जन्म : 17 अक्तूबर, 1950. अम्बाला छावनी ।

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी)

कृतियाँ : काव्य संग्रह : 'टूटा हुआ आदमी', 'और जीवन छला गया', 'अग्नि देश', 'कत्ल सूरज का', 'वक्त की साजिश', 'अपना-अपना सच' । कहानी संग्रह : 'ठहरी हुई जिंदगी', एक लड़ाई चुपचाप' उपन्यास : 'टूटे सपने' । जीवनी : 'विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर' ।

पुरस्कार : 'कत्ल सूरज का' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा वर्ष 1980-81 के लिये पुरस्कृत ।

सम्प्रति : एक सरकारी कार्यालय में ।

पता : 2171, सेक्टर-22 सी, चण्डीगढ़ ।

स्थायी पता : हरगोलाल रोड़,
2494, अम्बाला छावनी,
(हरियाणा)